|| श्रीहरिः ||
वसुदेवसुतं देवं कंसचाणूरमर्दनम् |
देवकीपरमानन्दं कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ||

॥ गीता पढ़ें, पढ़ायें, जीवन में लायें ॥

|| श्रीमद्भगवद्गीता विवेचन सारांश ||

अध्याय 16: दैवासुरसंपद्विभागयोग

1/2 (श्लोक 1-1), रविवार, 16 जुलाई 2023

विवेचक: गीता विशारद डॉ आशू जी गोयल

यूट्यूब लिंक: https://youtu.be/Q8YQcktw8Ek

दैवी सम्पदा के लक्षण

आज के विवेचन सत्र का प्रारम्भ गुरु वन्दना तथा सुन्दर दीप प्रज्वलन के साथ हुआ। हमें इस जन्म के पुण्य या पिछले जन्म के पुण्य या फिर पितरों के पुण्य आशीर्वाद के कारण गीता पठन-पाठन का सौभाग्य प्राप्त हुआ है क्योंकि गीता जी को पढ़ने का सौभाग्य कोई चुन नहीं सकता। गीता जी को पढ़ने के लिए हम भगवान द्वारा चुने जाते हैं।

आदि गुरु शङ्कराचार्य ने नौंवी शताब्दी में सारे शास्त्रों का संशोधन किया और घूम-घूम कर सारे बौद्ध मठों को सनातन विहार बनाया। उन्होंने अपने भाष्य भज गोविन्दम् में कहा है-

भगवद् गीता किञ्चिदधीता,
गङ्गा जललव कणिकापीता।
सकृदपि येन मुरारि समर्चा,
क्रियते तस्य यमेन न चर्चा॥२०॥

अगर हमने गीता जी थोड़ी भी अपने जीवन में धारण कर ली तो फिर हम भगवान के हो जाते हैं। यमराज का हम पर शासन नहीं रहता। मनुष्य जीवन के उद्धार के लिए पाँच 'ग' बताए गए हैं-

1) गऊ
2) गङ्गा
3) गायत्री
4) गीता
5) गोविन्द

सभी उपनिषदों का सार गीता, गाय के तुल्य बताई गई है। भगवान ने दसवें अध्याय के इकत्तीसवें श्लोक में कहा है कि नदियों में मैं गङ्गा हूँ। साथ ही दसवें अध्याय के ही तैतीसवें श्लोक में कहा है कि, **गायत्री छन्दसामहम्** अर्थात् मैं गायत्री नामक छन्द हूँ और भगवान कहते हैं, हे अर्जुन!

य इमं परमं गुह्यं मद् भक्तेष्वभिधास्यति।
भक्तिं मयि परां कृत्वा मामेवैष्यत्यसंशय़ः।।68।।

अर्थात् मेरे इस परम गुह्य ज्ञान को जो अपने जीवन में धारण करता है, वह मुझे बहुत प्रिय है और वह मुझ को प्राप्त होता है, इसमें कोई संशय की बात नहीं है। जो इसका प्रचार और प्रसार करेगा वह भी मुझको ही प्राप्त होगा। भगवान इसके भी आगे कहते हैं। यह भगवान के श्री मुख से कहीं हुई बात है कि उस से बढ़कर मेरा कोई अन्य प्रिय होगा भी नहीं।

न च तस्मान्मनुष्येषु कश्चिन्मे प्रियकृत्तमः।
भविता न च मे तस्मादन्यः प्रियतरो भुवि।।69।।

जितने भी महापुरुष हुए हैं चाहे वह राजनैतिक या सामाजिक जीवन के नेता हों या आदिगुरू शङ्कराचार्य हों या रामानुजाचार्य, सभी गीता जी को आधार मान कर अपने ज्ञान का मार्ग प्रशस्त करते हैं।। गाँधी जी ने भी कहा था जब भी मुझे दुविधा होती है और किसी बात का समाधान नहीं मिलता तो मैं अपनी माँ की गोद में चला जाता हूँ। वह माँ, गीता माँ है। यह एक अद्भुत ग्रन्थ है। इसके वक्ता और श्रोता भी अद्भुत ही हैं। यह ऐसा ग्रन्थ है जो समराङ्गण में कहा गया है किसी सत्सङ्ग में नहीं। यह जीवन की उस विषम परिस्थिति में कहा गया जब जीवन का कोई भरोसा नहीं था। उस विषम परिस्थिति में भी ऐसा ज्ञान दिया गया जो शताब्दियों तक, सहस्त्राब्दियों तक मनुष्य के लिए ज्ञान वर्षा का परिचायक बन गया।

नित्य लीला लीन परम श्रद्धेय सेठ जयदयाल जी गोयन्दका ने एक बार अपनी प्रस्तावना में कहा था- शास्त्रों का अवलोकन करने के पश्चात इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि गीता के समान मनुष्य मात्र के लिए कल्याणकारी कोई दूसरा ग्रन्थ इस संसार में स्थापित नहीं। यह वह व्यक्ति हैं जिन्होंने प्रमाद में और स्वप्न में भी झूठ नहीं बोला है।

गीता एक "guarantee card" है। इसमें कर्मकाण्ड की व्याख्या नहीं है। कोई भी सम्प्रदाय हो, सभी इसे मानते हैं। गीता जी एक असाम्प्रदायिक ग्रन्थ है। गीताजी के बारहवें अध्याय में भक्त के उनतालीस लक्षण बताए गए हैं पर कोई भी कर्मकाण्ड से सम्बन्धित नहीं है।

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च ।
निर्ममो निरहङ्कारः समदुःखसुखः क्षमी ॥13॥

He talks about the outcomes. वह मार्ग की नहीं गन्तव्य की बात करते हैं। भगवान ने बारहवें अध्याय में भक्त की सूची दी है तो दूसरे में स्थितप्रज्ञ की सूची दी। तेरहवें में ज्ञानी की सूची दी है तो चौदहवें में गुणातीत की। सोलहवें में दैवी तथा आसुरी गुणों की सूची दी है।

पहले तीन श्लोक में भगवान ने छब्बीस दैवी गुण बताए हैं। भगवान ने यहाँ यह बताया कि अगर तुम अपने आप को भगवान का मानते हो, भगवान से डरने वाला मानते हो, भगवान का भक्त मानते हो, तो निम्न सूचियों में अपने आप को पहचानो कि तुममें इनमें से कौन - कौन से गुण हैं। भगवान यह नहीं पूछते कि तुम क्या करते हो? भगवान यह पूछते कि तुम्हारे अन्दर क्या घटा? यह एक व्यवहारिक ग्रन्थ है।

जैसे सूर्य उदय होने पर अन्धकार नष्ट हो जाता है। जितना हम गीता को पढ़ेंगे और जितना हमारा जीवन सन्मार्ग की ओर बढ़ेगा यह छब्बीस गुण छब्बीस पुष्पों की तरह हमारे जीवन में खिलने लगेगें। छब्बीस पुष्प प्रकट हो रहे हो तभी हमारा यह साधना का मार्ग सही है। हम जो कुछ भी कर रहें हैं वह सही है और अगर प्रकट नहीं हो रहे हैं तो फिर हमारा साधना का मार्ग सही नहीं है।

16.1

श्रीभगवानुवाच
अभयं(म्) सत्त्वसंशुद्धिः(र्), ज्ञानयोगव्यवस्थितिः।
दानं(न्) दमश्च यज्ञश्च, स्वाध्यायस्तप आर्जवम्।।16.1।।

श्रीभगवान बोले – भय का सर्वथा अभाव; अन्तःकरण की अत्यंत शुद्धि; ज्ञान के लिये योग में दृढ़ स्थिति; सात्त्विक दान; इन्द्रियों का दमन; यज्ञ; स्वाध्याय; कर्तव्य-पालन के लिये कष्ट सहना और शरीर-मन-वाणी की सरलता।

विवेचन:- भगवान पहले श्लोक में नौ लक्षण बताते हैं कि दैवी गुण वाले लोग कौन होते है। बाद में भगवान चौथे, पाँचवें, छठे श्लोक में आसुरी गुण भी बतायेंगें।

पहला लक्षण भगवान बहुत ही अद्‌भुत बताते हैं-

अभय- हम अभय को महत्त्वपूर्ण दैवी गुण की दृष्टि से नहीं देखते हैं। अभय का देवता से क्या लेना - देना है? यह बहुत बड़ी बात नहीं दिखती है। पर भगवान ने सारे गुणों को कहने से पहले ही अभय कहा जिसका अर्थ है-- निडरता, अभयता। भगवान ने कहा, अभयता ही सबसे पहले चाहिए।

हितोपदेश का एक श्लोक है---

आहार निद्रा भय मैथुनं च सामान्यमेतत् पशुभिर्नराणाम् ।
धर्मो हि तेषामधिको विशेष: धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः ॥

भगवान ने आहार, निद्रा, भय और मैथुन सभी को दिया है। पशु को भी दिया है, मनुष्य को भी दिया है किन्तु मनुष्य इसका उपयोग विवेक के साथ करता है और पशु में विवेक नहीं होता है। मनुष्य को पता होता है कि इसका प्रयोग कब करना चाहिए, कब नहीं करना चाहिए? मनुष्य इसका सदुपयोग भी कर सकता है, दुरुपयोग भी कर सकता है। भय हमें गलत मार्ग पर जाने से रोकता भी है। धर्म पालन से जीवन में अभयता आती है। जिसका जीवन जितना धर्मशील होगा, वह उतना ही निर्भय होगा।

दुबई के मैत्री मिलन में एक प्रश्न आया कि गीता में बार-बार जो धर्म की परिभाषा दे रहे हैं, वह हिन्दु धर्म से सम्बन्धित है अथवा मुस्लिम धर्म से? जब भी हम भारतीय सनातन धर्म के ग्रन्थ देखेंगे, गीता को देखेंगे तो धर्म का अर्थ रिलीजन कहीं भी नहीं है। रिलीजन का अर्थ सम्प्रदाय होता है। धर्म का उससे कोई भी लेना-देना नहीं होता। धर्म का सीधा अर्थ होता है-- कर्त्तव्य। राजधर्म यानि राजा का कर्त्तव्य, पुत्रधर्म- पुत्र का कर्त्तव्य इत्यादि।

हम जिस रोल में रहते हैं हमारा वहाँ जो कर्त्तव्य होता है वही हमारा धर्म है। साधु धर्म, सन्यासी धर्म, प्रजा धर्म, पुत्री धर्म। सभी के अपने-अपने रोल के अनुसार उनका कर्त्तव्य नियत है, यही धर्म है। जो जितना धर्म पालन करता है, जो अपने जितने कर्त्तव्यों का पालन करता है, वह उतना निर्भय रहता है। कर्त्तव्यों का उल्लङ्घन करने वाला हमेशा डरता है। हम निर्भयता का अर्थ हमेशा निरङ्कुशता से ले लेते हैं, जिसका अर्थ प्रायः लापरवाह और दिशाहीन होता है। शास्त्रकारों ने निर्भयता का सबसे स्पष्ट अर्थ अभयता दिया है।

ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय स्वामी रामसुखदास महाराज जी ने दो शब्दों की व्याख्या बहुत ही अच्छे ढङ्ग से की है। एक लापरवाह और दूसरा बेपरवाह। लापरवाह तामसिक है, बेपरवाह सात्त्विक है। लापरवाह जिसे कर्त्तव्य का भान नहीं होता, बेपरवाह जिसे परिणाम की चिन्ता नहीं है। लापरवाह और बेपरवाह शब्द एक जैसे दिखने पर भी एक दूसरे के विपरीत हैं। लापरवाह अज्ञानी है तो बेपरवाह ज्ञानी है। उसी प्रकार जो एकदम निडर है, वह अज्ञानी है। जो अज्ञानी होते हैं, वही निडर होते हैं। अधिकतर हमें बड़े माफिया टाइप के लोग निडर दिखेगें। यह तामसिक आसुरी प्रवृत्ति है। जैसे लापरवाह और बेपरवाह अलग है वैसे ही निडरता और निर्भयता अलग-अलग शब्द है। न समाज से डरें, न माता-पिता से डरें, न शास्त्रों से डरें, न साधु समाज से डरें, यह सब निर्भयता नहीं है, निरङ्कुशता है।

अभय, जैसे छोटा बालक माँ की गोद में सो जाता है क्योंकि उसे पता होता है कि माँ उसे नहीं गिराएगी। उसे परवाह नहीं होती कि वह गिर जाएगा । वह चैन से सो जाता है, माँ ही उसे सम्भालती रहती है। जिसको धर्म में विश्वास है, वह ऐसा ही निडर हो जाता है। **"धर्मो रक्षति रक्षितः"** अर्थात् **"धर्म उन लोगों की रक्षा करता है जो इसकी रक्षा करते हैं।"**

एक बार कबीर दास जी से किसी ने पूछा, आप को डर लगता है कि नहीं। तब कबीर दास जी ने कहा--

काल पकड़ चेला किया, भय के कतरे प्राण।
समरथ गुरु सिर पर खड़े, किसको करें सलाम।।

उन्होंने काल और भय दोनों को अपने वश में कर लिया। जिनके सिर पर बड़ों की छत्रछाया होती है, गुरु का आशीर्वाद होता है, उन्हें किसी प्रकार का भय नहीं रहता हैं।

मानस में परशुराम प्रसङ्ग आता है। इसमें एक बहुत ही सुन्दर बात है कि धनुष भङ्ग के समय परशुराम जी बहुत क्रोध मे थरथराते हुए आए। तब परशुराम जी ने सोचा कि क्रोध में रहता हूँ तब मेरे थरथराने से बड़े-बड़े राजा लोग हिल जाते हैं, यह तो दोनों छोटे-छोटे युवा हैं फिर भी इन्हें डर नहीं लग रहा है। उन्होंने भगवान से पूछा कि क्या आपको डर नहीं लग रहा? तो भगवान ने कहा कि हमें क्यों डर लगेगा? हम तो आपकी शरण में हैं तो फिर हमें क्यों डर लगेगा?

विप्र वंश की अस प्रभुताई।
अभय होए जो तुमही डराई।।

श्री मोहन भागवत जी ने आर. एस. एस. के अधिवेशन में बहुत ही सुन्दर बात कही कि जो अच्छा व्यक्ति होता है वह न तो किसी को भय देता है और न ही भयग्रस्त होता है। साधारण रूप से समझना चाहिए। निरङ्कुशता तमोगुण है और अभयता सद्गुण है। तमोगुण में लोग हमेशा एक अनिष्ट की आशङ्का से ग्रस्त रहते हैं। बहुत सारे लोगों में घबराहट बनी रहती है। डर लगता है, कहीं कुछ हो न जाए। यह इतना धन इकट्ठा किया है तो उसका क्या होगा। एक अनिष्ट को लेकर आशङ्का बनी रहती है। जिसका जीवन जितना भगवताश्रय वाला होता है, उसके जीवन में उतनी ही अभयता रहती है।

हमारे साथ श्री रघुनाथ तो फिर किस बात की चिन्ता?
चरण में रख दिया जब माथ फिर किस बात की चिन्ता?

सत्त्व संशुद्धिः- अन्तःकरण की निर्मलता।

भगवान कहते हैं कि एक हमारा बाहरी शरीर होता है --हाथ, पैर, बाल आदि जो दिखते हैं, यह हमारा बाहरी शरीर है और एक अन्तःकरण का शरीर होता है। एक अन्दर सूक्ष्म शरीर है, इसे अन्त: करण कहते हैं। यह अलग-अलग नहीं होता है। जब यह इच्छा करता है, कामना करता है, सङ्कल्प करता है, विकल्प करता है तो यह मन हो जाता है। जब यह सभी निर्णय करता है कि यह अच्छा है, यह बुरा है, यह ठीक रहेगा, करना चाहिए कि नहीं करना चाहिए तो यह बुद्धि हो जाता है। जब यह धारणा करता है कि मैं स्त्री हूँ, मैं पुरुष हूँ, मैं बलवान हूँ, मैं विद्वान हूँ, वृद्ध हूँ, मैं बड़ा हूँ, मैं छोटा हूँ, मैं डरपोक हूँ, मैं बहुत बहादुर हूँ, मैं भक्त हूँ। जिस पल यह अपने होने की प्रतीति करता है, यह अहम् कहलाता है। हम रात को सो रहे हैं। सोते समय भी हमें पता चले कि हम सो रहे हैं तो यह अहम् है। इस प्रकार अन्तःकरण की चार वृत्ति होती है। मन बुद्धि, चित्त और अहङ्कार। अहम् और ईगो में अन्तर होता है ।

भगवान कहते हैं कि यह जो तेरा अन्तःकरण है, वह पवित्र हो जाए। माताऐं सुबह पात्र में दूध लेने जाती हैं तो पात्र साफ हो तो भी उसे अच्छी तरह पोंछती हैं। एक भी कण रह जाए तो दूध के फटने की सम्भावना रहती है इसलिए उसको इतनी अच्छी तरह साफ किया जाता है। तभी भगवान कहते हैं कि तुम्हारा यह अन्तःकरण गन्दा है, छल-कपट युक्त है, अहङ्कार युक्त है, इसमें कामनाऐं हैं तो मैं इस गन्दे पात्र में कैसे समाऊँगा?

नवधा भक्ति में भगवान ने शबरी को कहा-

मोहे कपट छल छिद्र न भावा।

अर्थात् मुझे कपट, छल-छिद्र नहीं चाहिए। जब हम अपना विचार करते हैं तो, हम तो इसी से भरे पड़े है। कपड़े का मैल निकाले बिना उसको स्वच्छ नहीं कहा जा सकता। कपड़े को साफ करने के लिए उसका मैल निकालना पड़ता है। उसी प्रकार अन्त: करण तो शुद्ध ही रहता है। उसके अन्दर की वृत्तियाँ निकालनी पड़ती है। हम कहते हैं कि भगवान अन्दर बैठे हैं। अगर भगवान अन्दर बैठे हैं तो फिर इतनी गन्दगी हमारे मन में कहाँ से आई? इतना पाप, इतना छल प्रपञ्च कहाँ से आता है? वह अन्दर बैठे तो हैं पर हमारे वृत्तियाँ इतनी गन्दी हो चुकी हैं कि वह दिखाई ही नहीं देते। जैसे दर्पण को अगर हम प्रयोग में नहीं लाए तो उस पर धीरे-धीरे धूल की परत जम जाती है। फिर जब हम उस में अपना चेहरा देखते हैं तो क्या उसमें हमें अपना चेहरा दिखाई देता है? नहीं देता है! और अगर एक कपड़ा लेकर उस मैल को साफ किया तो हमें अपना प्रतिबिम्ब दिखाई देने लगता है। प्रतिबिम्ब तो पहले भी था पर दिखाई नहीं देता था, मैल के कारण। उसी प्रकार भगवान भी तो अन्दर ही बैठे हैं। पर अपने अन्दर की गन्दगी के कारण हमें दिखाई नहीं देते हैं।

ज्ञानयोगव्यवस्थिति:- ज्ञान योग में दृढ़ होना।

हम भी बहुत ज्ञानी होते हैं। मन की स्थिति भी बहुत अच्छी होती है। गीता जी पढ़ने के बाद मन की स्थिति और भी अच्छी हो जाती है। विवेचन सुनकर भी अच्छा लगता है लेकिन विवेचन खत्म होने के पन्द्रह मिनट बाद व्हाट्सएप चालू हुआ तो फिर हम अपनी पूर्व स्थिति में आ जाते हैं। ज्ञान स्थिर नहीं रहता है। हमारा ज्ञान लहरों की तरह उठता-बैठता रहता है। भगवान कहते हैं कि ज्ञान की स्थिरता जरूरी है। हम रजोगुण के प्रभाव में, सतोगुण में कुछ देर रहते हैं, फिर वापस रजोगुण में आ जाते हैं। भगवान कहते हैं कि सतोगुण में इस ज्ञान को निरन्तर धारण करना होगा। उतार-चढ़ाव बन्द होना चाहिए। सतोगुण में ज्ञानी की प्रवृत्ति रहनी चाहिए।

दान- दान को हम उपकार मानते हैं। अगर हम किसी को कुछ देंगे तो उस पर उपकार करेंगे। दान देने को हम उपकार मानते हैं, कर्त्तव्य नहीं मानते हैं। भगवान इसको उपकार नहीं कर्त्तव्य कहते हैं। भगवान ने दो पंक्तियाँ बनाई हैं। एक लेने वालों की, एक देने वालों की। अगर आपको देने वाले की लाइन में खड़ा किया है तो देना ही पड़ेगा और लेने वाले को कितना भी मिल जाए, फिर भी वह भगवान से माँगता ही रहता है। हर बार बच्चे की तरह हम माँगते रहते हैं। हम बच्चे से वृद्ध हो जाते हैं, पर माँगना नहीं छोड़ते केवल हमारी माँगने की भाषा बदल जाती है।

भगवान ने हमें समृद्ध बनाया है, प्रचुर मात्रा में धन दिया, सुखी परिवार दिया, पर हमारी कटोरा लेकर घूमने की आदत नहीं जाती किन्तु जिसमें दैवी गुण आ जाते हैं, उसमें माँगने की वृत्ति खत्म हो जाती है और वह देने में लग जाता है। वह ढूँढता है, मैं किसे दूँ और कैसे दूँ? धन का दान एक प्रकार का दान है। मैं पूरे दिन में किसके क्या काम आ सकूँ उसे इस बात की चिन्ता रहती है। गीता परिवार के सात हजार सेवाभावी अपने समय का दान करते हैं, यह भी एक प्रकार का दान ही है।

प्रसन्नता का दान- जिससे मिलो प्रसन्नता से मिलो, मुस्कुराते हुए मिलो यह भी एक प्रकार का दान है।

शुद्धता का दान करें। हमारे प्रधानमन्त्री जी ने स्वच्छता का अभियान चलाया। सड़क पर कचरा मिले तो सब अपने हाथों से उठाकर कूड़ेदान में डालें। यह दान भी शुद्धता का दान है। इसमें किसी प्रकार का खर्चा नहीं होता है, पर इसमें देने की भावना आती है कि मैं भी देश की सेवा में अपना योगदान दे रहा हूँ।

सहानुभूति भी एक प्रकार का दान है। किसी दुखियारे के पास पाँच मिनट बैठो और उसे सान्त्वना दो कि जो भी होगा, ठीक हो जाएगा। भगवान सब ठीक करेंगे। यह दो मीठे बोल किसी के जीवन का कितना बड़ा दर्द कम कर देते हैं यह हमारी समझ से बाहर होता है। हर क्षण खोजें, सुबह से शाम तक कुछ न कुछ मैं देता रहूँ। यह नियति बन जाये। दान पर यह सुन्दर गीत कुछ इस प्रकार है:-

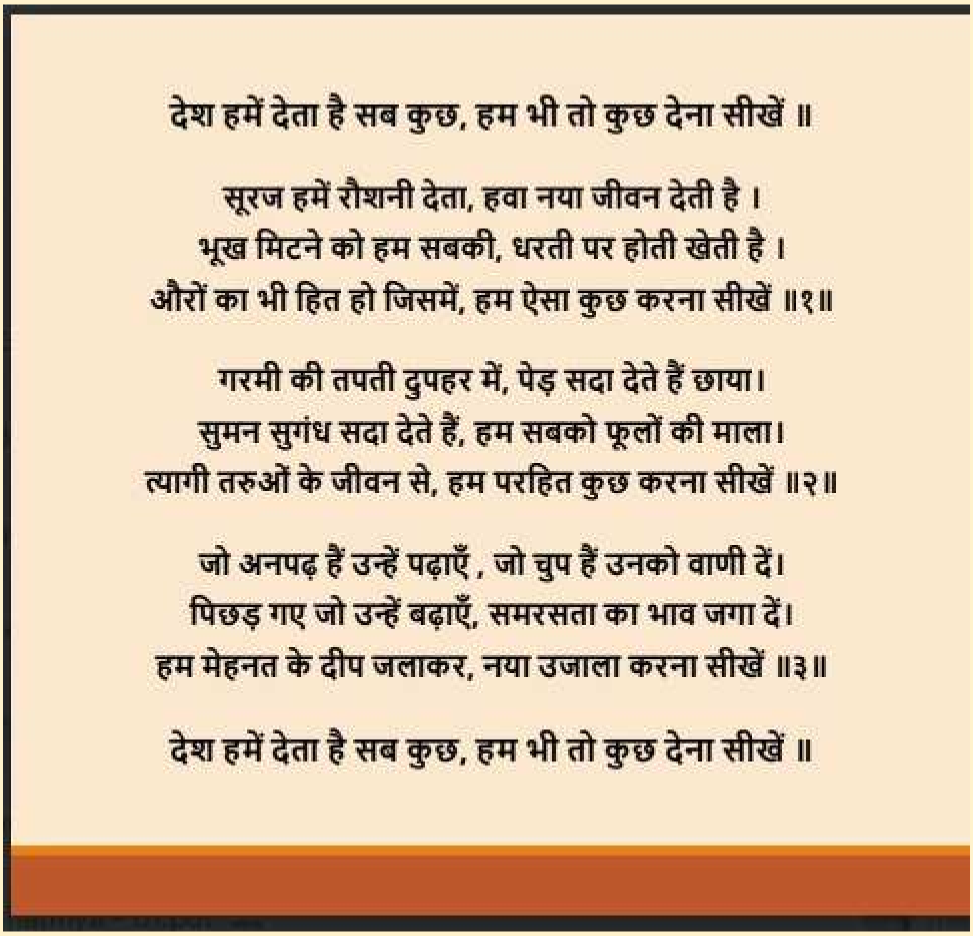

देश हमें देता है सब कुछ, हम भी तो कुछ देना सीखें ॥

सूरज हमें रौशनी देता, हवा नया जीवन देती है ।
भूख मिटने को हम सबकी, धरती पर होती खेती है ।
औरों का भी हित हो जिसमें, हम ऐसा कुछ करना सीखें ॥१॥

गरमी की तपती दुपहर में, पेड़ सदा देते हैं छाया।
सुमन सुगंध सदा देते हैं, हम सबको फूलों की माला।
त्यागी तरुओं के जीवन से, हम परहित कुछ करना सीखें ॥२॥

जो अनपढ़ हैं उन्हें पढ़ाएँ , जो चुप हैं उनको वाणी दें।
पिछड़ गए जो उन्हें बढ़ाएँ, समरसता का भाव जगा दें।
हम मेहनत के दीप जलाकर, नया उजाला करना सीखें ॥३॥

देश हमें देता है सब कुछ, हम भी तो कुछ देना सीखें ॥

दान वह होता है जिसके बदले में कुछ लेने की इच्छा न हो।

दमः- अर्थात् इन्द्रियों का संयम।

कुछ लोगों में आदत होती है। बाहर किसी भी तरह की आवाज आए तो तुरन्त बालकनी में जाते हैं। पता नहीं चले तो चौकीदार से पूछते हैं। कहाँ क्या हो रहा है? कुछ लोगों को दूसरे के जीवन में हस्तक्षेप करने की आदत बहुत ज्यादा होती है। लोगों को अपनी इन्द्रियों पर संयम नहीं होता है। कभी बाल घुमाते रहते हैं, कभी साड़ी का पल्लू घुमाते रहते हैं। बैठेंगे तो पैर हिलाते रहते हैं, घास पर बैठने पर घास उखाड़ते रहते हैं। यह सब इन्द्रियों पर संयम न होने के कारण होता है। अपनी इन्द्रियों पर हमारा कितना नियन्त्रण है, इस बात का ध्यान रखना दम है।

प्रज्ञा चक्षु- इस पर महाराज जी का बहुत ही अच्छा प्रवचन है कि अपनी आँखों का ध्यान इधर-उधर मत जाने दो क्योंकि जिसको दृष्टि देते हैं, उसको मन भी देना पड़ता है इसलिए व्यर्थ दृष्टि मत दो, मन भी देना पड़ता है वहाँ पर। व्यर्थ सुनो मत, व्यर्थ चखों मत। कुछ भी मुँह में, क्यों बार-बार झूठा करना, कुछ लोग भोजन करने के बाद भी कुछ-कुछ खाते रहते हैं।

यज्ञः- जो हम दीपावली और गृह प्रवेश के समय करते हैं केवल वही यज्ञ नहीं है, जो अपने कर्त्तव्य पूर्ति के लिए किया जाता है, बिना किसी इच्छा के किया जाता है तो वह यज्ञ हुआ। हर एक कर्म यज्ञ है। दसवें अध्याय में भगवान ने कहा **यज्ञानाम जपयज्ञोस्मि**, यज्ञों में मैं जप यज्ञ हूँ। भगवान का नाम जपने को भगवान ने यज्ञ बताया है।

स्वाध्याय:- अर्थात् स्व का अध्ययन।

मैं कौन हूँ? स्वाध्याय का साधारण अर्थ हम लोग पढ़ना मानते हैं, पर स्वाध्याय का अर्थ होता है अपने को पहचानना, अपने लिए अध्ययन करना, प्रवचन सुनना। टीवी पर विभिन्न अध्यात्मिक कार्यक्रम देखते हैं, वह भी स्वाध्याय ही है।

तप- तप का अर्थ है जो बातें मैंने अपने लिए निश्चित की हैं या फिर धर्म की दृष्टि से निश्चित की हैं उसे प्रसन्नता पूर्वक करना, मैंने यह नियम लिया कि मैं भगवान की पूजा किए बिना मुँह झूठा नहीं करूँगा चाहे कितना भी कुछ क्यों न हो जाए, यह एक प्रकार का तप है।

आर्जवम :- बड़ा अद्भुत गुण है। इसका सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है माता शबरी। सरलता की प्रतिमूर्ति है माता शबरी। ज्ञान का एक ऐसा नियम है जो ज्ञान की याचना करे, उसी को ज्ञान देना चाहिए। अर्जुन ने भी भगवान से प्रार्थना की थी कि मैं शिष्य रूप में उपस्थित हूँ। आप मुझे ज्ञान दें।

संन्यासं कर्मणां कृष्ण पुनर्योगं च शंससि ।
यच्छ्रेय एतयोरेकं तन्मे ब्रूहि सुनिश्चितम् ॥

शबरी के बारे में प्रसङ्ग अलग आता है कि उन्होंने एक बार भी भगवान से याचना नहीं की, कि मुझे ज्ञान सुनायें। यहाँ शबरी की कथा विस्तृत रूप से आती है। शबरी भील जाति की एक कन्या थी। शबर जाति की थी इसलिए शबरी कहलाई और भील जाति की थी इसलिए भीलनी भी कहलाई। मूल रूप में इनका नाम शमना है। जब यह छोटी बालिका थी तब कबीले के सरदार की पुत्री थी। वह बहुत ही मृदुभाषी कोमल स्वभाव की सात्त्विक कन्या थी। उन्हें बचपन में भेड़ के बच्चे मेमने के प्रति बहुत लगाव हो गया। उसके साथ दिन-रात खेलती, सो कर उठती तो सबसे पहले उसको ही दुलार करती। जब वह बारह साल की हो गई तो उसकी शादी निश्चित की गई। शादी के दो दिन पहले वह जब सो कर उठी तो उसे उसका मेमना नहीं मिला। उसको ढूँढने जङ्गल में गई और आधे दिन तक बिना कुछ खाए पिए ढूँढती रही। जब वह नहीं मिला तो एक पेड़ के नीचे बैठकर रोने लग गई। तभी उसकी सखी आई और पूछा क्या बात हुई? तब उसने सब बताया कि मेरा मेमना नहीं मिल रहा। सखी ने कहा कि बताने के लिए मना तो किया है। दो दिन बाद तेरा ब्याह है न इसलिए हर घर से एक मेमने को लाकर कमरे में बन्द कर दिया गया है ताकि बारातियों के खाने की व्यवस्था की जा सके। यह बातें सुनकर वह स्तब्ध हो गई, काँप उठी। मेरे मेमने को काटकर खिला देंगे। मेरे ब्याह में मेरा मेमना तो मरेगा ही बाकी और मेमनों को भी काट कर खिला देंगे। वह सुनकर बहुत चकित हुई। उसकी आँखों के सामने अन्धेरा छा गया कि यह क्या हो गया है? यह कैसे हो सकता है? मैं उसको कैसे रोक सकती हूँ? यह सोचा कि मेरी कौन सुनेगा कि मेरे मेमने को छोड़ दो, पर मेरी बात कोई मानेगा नहीं। उसने निश्चय किया कि मेरे कारण इतने छोटे मेमनों की हत्या हो जाए, यह मैं नहीं होने दूँगी। वह छोटी थी इसलिए किसी से सलाह भी नहीं कर पाई। उसने विचार किया कि यदि मैं अभी यहाँ से भाग जाऊँ और किसी को मिलूँ ही नहीं तो फिर ब्याह नहीं होगा। फिर किसी भी मेमने की जान नहीं जाएगी।

इसके लिए उसने यह निश्चय किया कि वह घर से भाग जाएगी। वह वहाँ से भाग गई। तीन दिनों तक भागती रही। तीन दिन तक भागते-भागते भूखी प्यासी एक जङ्गल में पहुँची। छोटी सी अबोध बालिका थी। भूख-प्यास से वह बेहोश हो गई। पास में ही मतङ्ग मुनि का आश्रम था। महर्षि वहाँ से जा रहे थे। उन्होंने अबोध बालिका को देखा। इस घने जङ्गल में अबोध बालिका कहाँ से आई? महर्षि बहुत सोच विचार करने लगे। उन्होंने उस पर जल के छींटे दिए। वह कुछ होश में आई। उसे जल पिलाया तब वह होश में आई। मुनि ने उससे पूछा कि तुम यहाँ कैसे आई? किस गाँव से आई हो? किस मार्ग से आई हो, पर वह कुछ भी बताने में सक्षम नहीं थी क्योंकि उसे खुद नहीं पता था कि वह कहाँ से आई है, उसे अपने गाँव तक का नाम नहीं मालूम था। वह बहुत ही सीधी-सादी कन्या थी। धीरे-धीरे उन्होंने गुरुदेव को बताया कि कैसे एक मेमने की जान बचाने के लिए वह भाग कर आ गई। गुरुदेव बहुत द्रवित हुए और उनको अपने आश्रम में ही रख लिया। गुरुदेव के दया भाव को देखकर वह द्रवित हो गई। गुरुभक्ति की भावना उसमें भर गई । वह आश्रम में रहकर छोटे-मोटे काम करती थी। कई दिन बीते, कई महीने बीते और कई वर्ष बीत गए। तब ऋषि कुमारों को आपत्ति होने लगी कि यह और कितने दिन यहाँ रहेगी। उन्होंने सोचा कि गुरुदेव से इस बारे में बात करनी चाहिए। जब शबरी ने यह सुना तो उसने सोचा कि वे गुरुदेव से बात करेंगे तो गुरुदेव सङ्कोच में पड़ जाएँगे। इससे अच्छा है कि उसे वहाँ से चले जाना चाहिए।

वह बिना किसी को बताए वहाँ से निकल गई और घने जङ्गल में जाकर रहने लगी। वहाँ रहते हुए भी उसे कई वर्ष बीत गए।

भीलनी थी, इसलिए जङ्गल में कन्दमूल खाकर निर्वाह करने लग गई। उसके मन में प्रगाढ़ गुरु भक्ति थी, इसलिए वह वहीं जङ्गल में रहने लग गई। उसने सोचा कि गुरु जी जिस मार्ग से जाते हैं, क्यों न उसकी सफाई कर दूँ और वह प्रतिदिन गुरु जिस मार्ग से जाते थे, उसकी साफ सफाई करने लगी। उसने यह भी सोचा कि ऋषि कुमारों को लकड़ियाँ लाने दूर जाना पड़ता है इसलिए जङ्गल से दूर-दूर से लकड़ियों को लाकर आश्रम के आसपास बिखरा देती थी। गुरु महाराज ने पूछा, शिष्यों क्या तुम रास्ते की सफाई करते हो? तब उन्होंने कहा- नहीं महाराज और आश्रम के आसपास लकड़ियाँ भी बिखरी रहती हैं, जैसे कोई काट कर रख गया हो। गुरुदेव ने सोचा कि अब रात भर जागकर देखना चाहिए कि कौन यहाँ काम करके जाता है। जब रात के अन्धेरे में एक परछाई काम करते नजर आई तो उन्होंने आवाज दी, कौन है? श्रमणा स्तब्ध रह गई। सामने गुरु महाराज को देखकर रोने लगी। तब गुरु महाराज ने पूछा? तुम कहाँ चली गई थी, बिना बताए। तब उसने कुछ नहीं कहा। फिर वह गुरु के आश्रम में रहने लगी। ऋषि कुमार भी अपनी पढ़ाई समाप्त करके चले गए थे। गुरुदेव की अवस्था हो गई थी। वहाँ कई दिन, कई वर्षों तक रहने के बाद एक दिन गुरुदेव ने कहा कि पुत्री मैं चाहता हूँ कि जीवन की अन्तिम अवस्था में हिमालय जाकर अपने प्राणों का त्याग करूँ इसलिए मैं वहाँ जा रहा हूँ। तुम यहाँ आश्रम में रहो। यहाँ मेरी तपस्या के प्रताप से कोई भी जङ्गली पशु आश्रम के अन्दर नहीं आएगा और तुम्हें किसी भी प्रकार का भय नहीं रहेगा।

गुरुदेव ने कहा, पुत्री तुमने मेरी बहुत सेवा की है। मैं तुम्हें आशीर्वाद देता हूँ कि एक दिन इस त्रिभुवन के नाथ तुम्हारे आश्रम में आएँगे और उसके माथे पर हाथ रखकर गुरुदेव वहाँ से चले गए। वह स्तब्ध रह गई थी कि गुरुदेव ने यह क्या कह दिया? वह कुछ कहती उससे पहले ही गुरुदेव वहाँ से चले गए। उसने सोचा गुरुदेव ने यह तो बताया नहीं कि भगवान किसी ओर से आएँगे और वह यह सोच कर कि भगवान आएँगे तो कहाँ बैठेंगे, क्या खिलाऊँगी यह सोचकर जङ्गल से कन्दमूल लाती। भगवान के लिए आसन बनाती और आश्रम के चारों तरफ की सफाई करती। सोचा करती थी कि भगवान न जाने किस रास्ते से चले आएँ। दिन-रात इसी चिन्तन में रहती कि भगवान आएँगे क्योंकि शबरी समझदार ज्यादा नहीं थी। वह यह सोचती थी कि गुरुदेव से पूछा ही नहीं कि कब आएँगे और आएँ भी तो भगवान की सेवा कैसे की जाए? उसके मन में यह था कि गुरुदेव ने कहा है तो आएँगे तो जरूर। हमारे तो बस थोड़ी सी भी बात मन में आ जाए तो हम सोचने लगते हैं कि गुरुदेव ने बहलाने के लिए कह दिया और कितनी प्रतीक्षा करेंगे? महीना दो महीना हो गया और कितनी प्रतीक्षा करेंगे। अब तो आ जाना चाहिए। हम दस तरह की बातें सोचते हैं, पर शबरी बहुत ही सहनशील थी।

सोलह वर्ष की शबरी प्रतीक्षा करते-करते अस्सी वर्ष की वृद्धा हो गई। भगवान आएँगे इस पर उसे विश्वास था। जब राम भगवान भी आए तो पम्पा सरोवर से मार्ग बदलते हुए आए। लक्ष्मण जी ने पूछा, इधर से क्यों जा रहे हैं? तब भगवान ने कहा- कुछ काम है चलो! भगवान मुड़कर शबरी के आश्रम में आए।

ताहि देइ गति राम उदारा। सबरी कें आश्रम पगु धारा॥
सबरी देखि राम गृहँ आए। मुनि के बचन समुझि जियँ भाए॥3॥

शबरी के आश्रम में भगवान आए। भगवान को देखकर शबरी के मन में सबसे पहला भाव यह आया कि मेरे गुरुदेव की बात सत्य हो गई और भगवान मेरे आश्रम में पधारे हैं। वह यह नहीं सोच रही थी कि भगवान पधारे हैं। उसके मन में यह आया कि मेरे गुरु का वचन सत्य हो गया।

सरसिज लोचन बाहु बिसाला।
जटा मुकुट सिर उर बनमाला॥
स्याम गौर सुंदर दोउ भाई।
सबरी परी चरन लपटाई॥4॥

शबरी ने भगवान के चरण पकड़ लिए और लिपट गई। बुढ़ी थी, कूबड़ निकल आया था लेकिन भगवान के चरण पकड़ कर लिपट गई। कभी उन्हें पास से देखती, कभी दूर से देखती। वह बोलना तो चाहती थी पर वह बोल नहीं पा रही थी।

प्रेम मगन मुख बचन न आवा।
पुनि पुनि पद सरोज सिर नावा॥

सादर जल लै चरन पखारे।
पुनि सुंदर आसन बैठारे॥5॥

भगवान के चरणों में बार - बार लिपट रही थी। सागर के जल से भगवान के चरण पखारे और भगवान को सुन्दर आसन बैठने के लिए दिया।

कंद मूल फल सुरस अति दिए राम कहुँ आनि।
प्रेम सहित प्रभु खाए बारंबार बखानि॥34॥

शबरी चख-चख कर भगवान को बेर दे रही थी और भगवान को चखकर दिया तो लक्ष्मण जी को बहुत तेज गुस्सा आया पर भगवान तो प्रेमवश होकर शबरी के जूठे बेर खा रहे थे। शबरी चार बेर चखती तब भगवान को एक देती है। भगवान उनके आगे हाथ पसारे थे कि शबरी कब बेर दे और कब मैं खाऊँ। लक्ष्मण ने सोचा कि निषाद राज ने जब बहुत सारे फल दिए थे तो भगवान ने नहीं खाये और कहा कि मैं दूसरों के फल नहीं खाऊँगा तो शबरी के फल भी नहीं खाएँगे। यहाँ तो भगवान शबरी के जूठे बेर भी बड़े प्रेम से खा रहे थे। साथ ही बहुत प्रशंसा भी कर रहे थे।

उत्तरकाण्ड में भी बात आती है कि जब भगवान का राज्याभिषेक होने वाला था तो भगवान के स्वागत में छप्पन भोग बनाए गए। तब वहाँ भी भगवान ने लक्ष्मण जी को कहा कि मुझे तो शबरी माता के बेर याद आ रहे हैं। छप्पन भोग में वह स्वाद नहीं है जो माता के बेर में था। इस तरह भगवान ने माता शबरी के बेरों की प्रशंसा की। लक्ष्मण जी को भी दिया पर लक्ष्मण जी ने नहीं खाए। उन्होंने चुपचाप पीछे से गिरा दिया।

पानि जोरि आगें भइ ठाढ़ी। प्रभुहि बिलोकि प्रीति अति बाढ़ी॥

अभी तक शबरी ने एक शब्द भी नहीं बोला। वह भगवान को देखती जा रही थी तो उसकी प्रीति बढ़ती जा रही थी। वह भगवान की ओर निहारकर बावरी हो रही थी।

केहि बिधि अस्तुति करौं तुम्हारी।
अधम जाति मैं जड़मति भारी॥

आप तो जहाँ जाते होंगे प्रभु लोग आपकी स्तुति करते होंगे किन्तु मुझे तो कुछ नहीं आता है। मैं अधम जाति की जड़मति नारी हूँ। मुझे कुछ नहीं आता है प्रभु!

अधम ते अधम अधम अति नारी।
तिन्ह महँ मैं मतिमंद अघारी॥

मैं तो सभी अधम नारियों में भी अधम हूँ। मैं आपकी स्तुति किस प्रकार करूँ, मुझे नहीं आता है।

कह रघुपति सुनु भामिनि बाता।
मानउँ एक भगति कर नाता॥2॥

भगवान बोले, मैं तो केवल एक ही नाता मानता हूँ। भक्त और भगवान के बीच का नाता और किसी नाते को नहीं जानता, जो भक्त है, वह मेरा है।

जाति पाँति कुल धर्म बड़ाई।
धन बल परिजन गुन चतुराई॥

भगवान यहाँ आठ बातें बताते हैं- जाति, पाँति, धन, कुल, बल, धर्म और चतुराई, मैं इन बातों को नहीं मानता। कौन कितना चतुर है और कौन कितना बलवान है, इससे मुझे कोई मतलब नहीं है।

भगति हीन नर सोहइ कैसा।
बिनु जल बारिद देखिअ जैसा॥3॥

मुझे इन गुणों का क्या करना है? जिसमें भक्ति नहीं है वह जल बिन बादल के जैसा है। शबरी ने यहाँ कुछ पूछा नहीं पर भगवान ने अपने मन से ज्ञान दिया। गीता में भी भगवान से जब अर्जुन ने पूछा तब भगवान ने ज्ञान दिया पर शबरी का प्रसङ्ग ही अनूठा है। भगवान उसे नवधा भक्ति का यहाँ ज्ञान दे रहे हैं।

नवधा भगति कहउँ तोहि पाहीं।
सावधान सुनु धरु मन माहीं॥
प्रथम भगति संतन्ह कर संगा।
दूसरि रति मम कथा प्रसंगा॥4॥

भगवान ने उसे नौ प्रकार की भक्ति का उपदेश दिया। भगवान ने कहा, प्रथम भक्ति वह होती है जो सन्तोंका सङ्ग करते हैं और दूसरी भक्ति वह होती है जिसमें लोग मेरी कथा प्रसङ्ग को सुनना और समझना चाहते हैं।

गुर पद पंकज सेवा तीसरि भगति अमान।
चौथी भगति मम गुन गन करइ कपट तजि जान।।
मंत्र जाप मम दृढ़ बिस्वासा।
पंचम भजन सो बेद प्रकासा॥

तीसरी भक्ति गुरु की सेवा है और चौथी भक्ति कपट छोड़कर मेरे समूल का ज्ञान। मन्त्र का जाप करना, मुझ पर दृढ विश्वास करना यह पाँचवीं भक्ति है।

छठ दम सील बिरति बहु करमा।
निरत निरंतर सज्जन धरमा॥

छठी भक्ति इन्द्रियों का संयम, शील, बहुत से कार्यों का वैराग्य और बहुत से सन्त पुरुषों के धर्माचरण में लगे रहना।

सातवँ सम मोहि मय जग देखा।
मोतें संत अधिक करि लेखा॥

सातवीं भक्ति है जगत में सब जगह मुझे देखना।

वासुदेव सर्वम इति, सिया राम में सब जग देखा।

सब जगह मुझे ही देखना और सन्तों को मुझसे भी बड़ा मानना।

आठवँ जथालाभ संतोषा।
सपनेहुँ नहिं देखइ ।।

जीवन में जो भी मुझे मिला उसी में संतुष्ट रहना।

संतुष्टो येन केन चित्त।

जाहि विधि राखे राम ताहि विधि रहिए।।
सीताराम सीताराम सीताराम कहिए जाहि विधि राखे राम ताहि विधि रहिए।।

सपने में भी दूसरों में दोष नहीं देखना चाहिए।

नवम सरल सब सन छलहीना।
मम भरोस हियँ हरष न दीना॥

जो छल रहित हो, पाप रहित हो और किसी भी अवस्था में मुझ पर विश्वास रखता हो, ऐसी नवीं भक्ति है।

नव महुँ एकउ जिन्ह कें होई।
नारि पुरुष सचराचर कोई॥3॥

शबरी इन नौ में से जिसके पास एक भी भक्ति हो, चाहे वह जीव हो या प्राणी वह मुझे अत्यन्त प्रिय है।

सोइ अतिसय प्रिय भामिनि मोरें।
सकल प्रकार भगति दृढ़ तोरें॥

इस तरह के भक्त मुझे बहुत प्रिय हैं क्योंकि मैं तुम्हारा वर्णन नहीं कर रहा हूँ। तुम जैसे भक्त मुझे अत्यन्त प्रिय हैं। भगवान ने कहा कि तुममें एक नहीं यह सारे के सारे गुण तुममें मौजूद हैं।

जोगि बृंद दुरलभ गति जोई।
तो कहुँ आजु सुलभ भइ सोई॥4॥

मम दरसन फल परम अनूपा।
जीव पाव निज सहज सरूपा।
जनकसुता कइ सुधि भामिनी।
जानहि कहु करिबरगामिनी॥5॥

भगवान ने कहा कि जो गति बड़े-बड़े योगियों को भी नहीं मिलती है। वह मैं तुम्हें प्रदान करता हूँ और उसके बाद शबरी योगाग्नि में जलकर भगवान के परमधाम में पहुँच गई।

कहि कथा सकल बिलोकि हरि मुख हृदय पद पंकज धरे।
तजि जोग पावक देह परि पद लीन भइ जहँ नहिं फिरे॥

नर बिबिध कर्म अधर्म बहु मत सोकप्रद सब त्यागहू।
बिस्वास करि कह दास तुलसी राम पद अनुरागहू।।

शबरी ने योगाग्नि में अपने शरीर को भस्म कर भगवान की चेतनता को प्राप्त किया। इस तरह शबरी माता का इतना दिव्य सरल स्वभाव था।

यहाँ विवेचन को विराम दिया गया।

प्रश्नोत्तरी:--

प्रश्नकर्ता:- बजरङ्ग भैया

प्रश्न:--अच्छा करेंगे अच्छा मिलेगा, बुरा करेंगे बुरा मिलेगा। धार्मिक खाते में पैसा तो आ जाता है पर सुख और दु:ख की अनुभूति जो होती है, वह भी क्या कर्म का फल है?

उत्तर:- दु:खी, सुखी होना यह कर्मफल नहीं, यह वृत्ति है और इसके अनुसार अगले कर्म का निर्माण होता है। जो दु:खी रहेगा वह अपने कर्म से अगले गलत कर्म का निर्माण करेगा। इसलिये सभी परिस्थिति में समान रहना चाहिए। सुख और दु:ख दोनों की तीव्रता को कम करना चाहिए कि वह सुख-दु:ख कितने लंबे समय तक हम सहन करते हैं। दु:ख का बुरा लगता है और खुशी को कितनी देर तक मनाते हैं, दोनों की ही तीव्रता को कम करना चाहिए। बात छोटी ही होती है, कोई इसे तुरन्त भूल जाता है। कोई छह महीने और कोई छह साल तक भी पकड़ कर रखता है। सुख और दु:ख दोनों की प्रतीति का जो परिमाप है, उसको कम करना चाहिए।

प्रश्नकर्ता:- कृष्ण लाल बन्सल भैया

प्रश्न:- नवधा भक्ति दो जगह आई है। रामायण में भगवान ने शबरी को बताया और भागवत में कपिल मुनि ने अपनी माँ देवहूति को बताया तो दोनों में क्या अन्तर है?

उत्तर:-दोनों की मौलिकता में कोई अन्तर नहीं है।

।। ॐ कृष्णार्पणमस्तु।।

हमें विश्वास है कि आपको विवेचन की रचना पढ़कर अच्छा लगा होगा। कृपया नीचे दिए लिंक का उपयोग करके हमें अपनी प्रतिक्रिया दीजिए।

https://vivechan.learngeeta.com/feedback/

विवेचन-सार आपने पढ़ा, धन्यवाद!
हम सब गीता सेवी, अनन्य भाव से प्रयास करते हैं कि विवेचन के अंश आप तक शुद्ध वर्तनी में पहुंचे। इसके बाद भी वर्तनी या भाषा संबंधी किन्हीं त्रुटियों के लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं।

जय श्री कृष्ण !
संकलन: गीता परिवार - रचनात्मक लेखन विभाग

हर घर गीता, हर कर गीता!
आइये हम सब गीता परिवार के इस ध्येय से जुड़ जायें, और अपने इष्ट-मित्र -परिचितों को गीता कक्षा का उपहार दें।

https://gift.learngeeta.com/

गीता परिवार ने एक नवीन पहल की है। अब आप पूर्व में सञ्चालित हुए सभी विवेचनों कि यूट्यूब विडियो एवं पीडीऍफ़ को देख एवं पढ़ सकते हैं। कृपया नीचे दी गयी लिंक का उपयोग करे।

https://vivechan.learngeeta.com/

|| गीता पढ़े, पढ़ायें, जीवन में लाये ||
||ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ||